कर नरसी अकेले ही जंगल जाकर स्थान की ओर
निकल चल पड़ा। पूरे सात काल सहकर भी भूखा
प्यासा। दूसरे दिन शाम को एक शिव मन्दिर
के पास पहुँचा और स्नान कर बेलपत्र फूल से
भगवान शंकर की पूजा की और भोलानाथ शंकर
के सामने फूट फूट कर रोते रोते न ही
सात दिन रात वैसे ही भूखे प्यासे पड़े रहे। प्रभु
प्रकट होकर वरदान मांगने को बोले तब नरसी ने
कहा "प्रभो। जो आपको अत्यन्त प्रिय
हो वही मुझे वरदान में देने की कृपा करें।
इस सदाशिव ने कहा संसार में श्री कृष्ण से अधिक
कुछ भी प्रिय नहीं है। पुत्र तुमको श्रीकृष्ण के
दर्शन करा दूं। इतना कह नरसी को दिव्य
देह प्रदान कर उसे साथ ले द्वारिका पहुंचा कर
श्री कृष्ण को समर्पित कर दिया। और श्री
कृष्ण ने नरसी के सिर पर हाथ रखकर
उसे स्वीकार कर लिया। उस समय से नरसी
वहीं रहकर श्रीकृष्ण की सेवा करने लगे और
गोपीनाथ में रासलीला में शामिल हो गये।

2075

ठाकुर जी ने

उनकी नम्रता को देखकर प्रसन्न हो, प्रभु ने हार
उतारकर भक्त को पहना दिया। (श्री कृष्ण जी ने सुई
सुई प्रशंसा की। इस तरह प्रायः एक साल बीत
गया। भगवान ने प्रभु को एक पुस्तक, करताल दो
पीताम्बर और मधुर-मुरली का मुकुट पहनाकर
जूनागढ़ भेज दिया। वहाँ जाने पर उनके भाई ने
बहुत कहने पर भी भगवान के दिये हुए
उपदेश और उपहारों को नहीं छोड़ा तब भाई
भावज ने पत्नी पुत्री पुत्र सहित इनको घर से
(एष) पृष्ठ 2068 में जानकारी — निकाल दिये (पुत्र) तब ये गाँव के बाहर धर्मशाला में
चले गये। इनके पास कुछ भी खाने को नहीं था।
अतः इनकी रात तक भजन कीर्तन कर सोने की
तैयारी कर रहे थे तब भगवान के भेजे हुए
ठाकुर जी एक सेठ के वेष में वहाँ पहुँचे। दूसरे
दिन सुबह ठाकुर जी ने बाहर में जाकर ~~उनकी~~
भगवान की प्रार्थना — ~~[illegible]~~ अनुसार सारा इन्तजाम कर दिया। (मकान में
प्रभु का मन्दिर, कीर्तनशाला, पाकशाला,
भण्डारघर, अतिथिशाला, सोने बैठने लायक
एकान्त और तीन वर्ष तक को लिये पर्याप्त प्रभु

अर्थ वस्त्रों भर दी और पाँच हजार स्वर्ण
मुद्रा उन्हें देकर ऋण जो लिया हुआ।
ये सारा अनुदान एवं स्वर्ण मुद्राएं नरसी जी
ने छः महीनों में ही साधु संतों की सेवा में
खर्च कर दी और घर की एक एक चीज
बेच कर भगवान को भोग लगाते और साधु
सेवा करते रहे। कुछ भी नहीं बचा पर नरसी
(51) पृष्ठ 2064 से उपपाठ जी उल्लास से भजन करते रहे। (51) इसी अवसर
पर पुत्री कुँवरबाई को विदा कराने ससुराल
के पुरोहित आ गये और तुरन्त विदा कराने
पर अड़ गये। बहुत कहने पर २-३ रुके रहे फिर
सोचा कल ही विदा कराकर ले जाऊँगा। नरसी
को कुछ चिन्ता नहीं अपना भजन करते
रहे। अचानक पुरोहित जी ने देखा श्री
कृष्ण हाथ फैलाकर साड़ियां दे रहे हैं रुक्मणी
जी स्वयं पहरा दे रही हैं। नरसी पद्मासन हाथ
जोड़े खड़े हैं, प्रभु साधुओं को दंडवत कर रहे हैं।

(50) नरसी के पुत्र का विवाह के कुछ ही समय
पृष्ठ 2068 मिलाया बाद अचानक मृत्यु हो गयी किन्तु इस दुःख
से विचलित न होकर नरसी और उनकी
पत्नि का भजन पूर्ववत् एकाग्रचित्त से
चलता ही रहा। पिता के श्राद्ध के दिन भाई के ताने
के कारण और नागरों के दबाव में पड़कर इन्हें
सारी नागर बिरादरी को निमंत्रित करना पड़ा
जबकि घर में कुछ भी सामान नहीं था। सामान
लेने गये तो एक भक्त के आग्रह करने पर उसके
भजन गाने बैठ गये। इतने मग्न हो गये कि श्राद्ध की
स्मरण ही नहीं रही तब भगवान ने ठाकुर के
मारफत छकड़ों भर कर सामान भेज दिया
और स्वयं ने नरसी का वेश धारण कर वहाँ
श्राद्ध कार्य सम्पादित किया। सारी नागर
बिरादरी को भोजन कराया। उधर भजन से
निवृत होने पर घर पहुँचे तब पता चला भगवान
ने ही नरसी बनकर सारा श्राद्ध करा कर फिर
नरसी पहुँचने पहले ही अन्तर्हित हो गये।

(क) पृष्ठ 2069 में देखें।
(ख) पृष्ठ 2069 में देखें
(ग) पृष्ठ 2070 में देखें।

२078

(अ) एक बार इनकी पत्नि को बहुत जोर की बुखार चढ़ी। सायंकाल घर आते समय एक अन्त्यज (हेड) ने अपने घर पर भजन करने की विनती की तब ये बिना पत्नि को अकेली छोड़ कर उस अन्त्यज के घर पर कीर्तन चले गये और दूसरे दिन प्रातः जब घर लौटे तो पत्नि को अंतिम श्वास लेते पा. और पत्नि की मृत्यु भगवान का नाम लेती लेती हो गयी। वहाँ के नागरिक नागरों ने अन्त्यज के घर कीर्तन करने के अपराध में इन्हें जाति से बाहर कर दिया था- इनको कुछ पता नहीं ये अपना भजन कीर्तन में लगे रहे। किंतु भगवान को अपने भक्त का यह अपमान सहन नहीं हुआ- दूसरे दिन दूसरे नागर के घर जाति भोज था- सब नागर भोजन करते पंगत में बैठे थे, तब भगवान की माया से प्रत्येक नागर के बगल में एक अन्त्यज बैठे दीखे। तब एक ने कहा कि यह नरसी को जाति च्युत करने के पाप

भी की फसल है और उसकी सलाह मान कई लोग
*बंदना की — जाकर नरसी को *भोजन के लिये बुला कर
लाये और उन्हें आगे पंगत में बैठाया।
नरसी के पास में बैठते ही पहले वाला
अपमान का दृश्य दूर हो गया और सबने
* (अ) — प्रसन्नतापूर्वक भोजन किया। नरसी की पत्नि के
श्राद्ध के अवसर नागर के नागरिकों ने नरसी को
दबाव डाल कर विवश किया कि दो दिन तक
समस्त नागर बिरादरी को पत्नि के श्राद्ध के
उपलक्ष में भोजन करावे। घर में खर्च के लिये
कुछ था ही नहीं अत: शाम को नरसी भगवान के
चरणों में लोट गये कब तक पड़े रहे इसका
उनको स्वयं को भी पता नहीं। सुबह होते
ही आवश्यक सामान पहुँच गया और दो
दिनों तक सारी नागरी बिरादरी का भोजन
कार्य पूर्ण रूपेण सम्पन्न हुआ। भगवान की
लीला अपरम्पार है।

२०४०

(7) एकबार माघ शुक्ला सप्तमी रविवार सं० के साठीवान सम्वत् १५८३ (?) को पुत्री कुंवर बाई (नानी बाई) के सीमन्त में भात को निमन्त्रण मिला। इनके पास कुछ भी था ही नहीं। किसी की टूटी बैलगाड़ी और बुड्ढे बैलों को जोत कर २-४ साधु और भगवान की प्रतिमा और पूजा का सामान लेकर चल पड़े। मार्ग में "गाड़ी टूट गयी तब श्री कृष्ण ने बढ़ई (खाती) का वेश बना कर आकर गाड़ी ठीक कर दी। पहुँचने पर इनको एक जीर्ण मकान में ठहरा दिया गया किंतु ये अपने श्री कृष्ण कीर्तन में लग गये। इनके पास भात भरने का कुछ भी सामान न देख कर पुत्री जब बहुत दुखी होने लगी तब "भगवान ही सब कुछ व्यवस्था करेंगे" कहकर उसे शान्त किया। सम्बन्धी के घर में भोजन के लिये बैठने के पहले इनको अत्यन्त गर्म जल स्नान के लिये दिया गया। ठंडा जल मांगने पर ताना कसा गया कि अपने प्रभु

से मांग लो। इस पर इन्होंने मल्हार राग में कीर्तन चालु किया तब भजन समाप्त होते ओर की नरसा होने लगी सब लोग भीग गये। इस प्रकार प्रभु ने इनकी लाज बचायी। भात के लिये कपड़ा देने के अवसर पर करताल लेकर भगवान को बुलाने लगे। इनका कीर्तन समाप्त होते ही मंगल गीत गाती हुई रुक्मिणी जी आदि के साथ भगवान सेठ के रूप में संस्कार मंडप में प्रवेश किया। नरसी के सिवाय अन्य कोई इस रहस्य को न जान सका। नरसी प्रभु के चरणों पर लोट गये। उपस्थित सज्जनों को अपना परिचय देते हुए प्रभु ने कहा "नरसी जी मेरे अभिन्न सखा हैं, मेरी सारी सम्पत्ति इन्हीं की कृपा का फल है"। भगवान ने बहुत ही उच्च कोटि का भात भरा। [illegible] दिन अन्तर्ध्यान हो गये। एक ब्राह्मण को अनुपस्थिति के कारण कुछ नहीं मिला था अतः उसके मांगने पर सवा पहर तक सोने की बरसा हुई थी।

२० ४२

(२) इनसे ईर्षा और द्वेष के कारण इनके बड़े भाई और अन्य नागरों ने चंचला नामी वेश्या को इनके पास भेजा - सात्विक रूप धर कर आयी, कीर्तन किया, पर भक्त राज को जब अनुचित प्रस्ताव किया तब इनके उपदेश से प्रभावित हो कर उसने अपना जीवन बदल कर भक्ति भजन में लग गयी और जिन्होंने उसे भेजा था उन्हें बहुत धिक्कारा।

(३) फिर उन लोगों ने दूसरा ही षड्यन्त्र रचा - इनके मामा अनन्तराम मुखिया बने - वहां के राजा के सामने इल्जाम लगाया कि कीर्तन के बहाने नरसी रात में व्यभिचार किया करता है - अनन्तराय ने कहा मेरी स्त्री भी नित्य पानी पिलाने के बहाने जाया करती है। राजा के पूछने पर नरसी ने कहा " मैं निर्दोष हूं, अपने राधेश्याम के नाम के सिवाय कुछ नहीं जानता। राजा ने एक फूलों का हार नरसी के हाथ में देकर कहा

आप राजमन्दिर में चलकर यह हार भगवान के विग्रह के कंठ में समर्पित कर दीजियें। मैं मंदिर का ताला बन्द करके चाभी अपने पास रखूँगा। यदि कल प्रातःकाल होने के पहले स्वयं भगवान प्रकट होकर यही हार आप के गले में डाल देंगे तो आप की निर्दोषता सिद्ध हो जायगी - अन्यथा आपको उचित दंड दिया जायगा। नरसी ने कहा मेरे लिये राजमहल और कारागृह समान हैं मुझे तो भजन के लिये कोई भी एक स्थान मिलना चाहिये इतना ही यथेष्ट है। वह हार भगवान के गले में पहना कर बाहर आ गये मंदिर में ताला बंद करके चाभी राजा ने अपने पास रख ली। फिर मन्दिर के चौक में कीर्तन के लिये बैठ गये। नरसी के मन में यह खटक रहा था कि मैं केदार राग तो गिरवी रख आया हूं केदार राग के बिना भगवान का आवाहन कैसे करूंगा।
तुलसी इस समस्या को हल करने के लिये

भगवान नरसी का भेष धारकर रास्ते में ही
उस महाजन के यहां जाकर रुपयों का भुगतान
कर भगवान ने वहाँ मन्दिर में वह पत्र अपने हाथ
से नरसी के सामने गिरा दिया। नरसी के
सिवाय यह रहस्य कोई भी न जान सका।
फिर मस्त होकर नरसी नाचने लगे।
सवेरा हो चला। तो पंडों ने नरसी को
समाप्त करने के लिये कहा शीघ्र शीघ्र
पूरी कीजिये। तब बेचैन हो नरसी केदार
राग से भजन गाने लगे 'मैं तो पतित उद्धारक
आप ही हैं'। मंदिर के द्वार के लोहे की
जंजीर और ताला धड़ाधड़ टूटकर
जमीन पर गिर पड़ा, फाटक अपने आप
खुल गया और एक दिव्य ज्योति
मंदिर से निकलकर भक्तराज की ओर चलने
लगी। नरसी के पास पहुंचने पर उस ज्योति
में श्री कृष्ण का द्युतिमय स्वरूप दिखायी पड़ा।
भगवान ने सबके देखते देखते अपने कंठ से वह
उतार कर नरसी को गले में पहना दिया — प्रभु ने भक्त
की लाज बचाली। धन्य हो प्रभो।

(८) भक्त सन्त प्रभु के श्री-चरणों पर लोट कर प्रार्थना
करते हुए बोले "मुझे इस अयोग्य संसार से
कोई प्रयोजन नहीं"। प्रभु समझाते हुए बोले "मुझे
प्राप्त करने के लिये वन-वास, तप आदि की कोई
खास आवश्यकता नहीं। संसार को त्यागकर मुझे
प्रसङ्ग— करने वाले से तो संसार में रह कर मुझसे प्रेम
करने वाला भक्त मुझे अधिक प्रिय है। अतः इसके
भागने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये"। नरसी ने
निवेदन किया "मैं तो सांसारिक कार्यों के लिये हमेशा
आपको कष्ट देता ही रहा"। प्रभु ने कहा
"तुमने तो अपना सब कुछ न्योछावर करके मेरा
भजन किया, मैं तो तुम्हारी भक्ति का एक अंश
का भी बदला नहीं दे सकता। क्या करूँ, मुझे अपने भक्तों
का कर्जदार बने रहने में ही संतोष मिलता है। भक्ति
का बदला चुकाकर मैं उसका महत्व नहीं घटाना
चाहता"। नरसी ने निवेदन किया "ऐसा समय
कब आयेगा जब मैं आपके चरणों की रज नित्य
धारण किया करूँगा"। भगवान ने कहा "मैं ने
यह मनुष्य देह भी तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही

दी है। तुम पूर्वजन्म में मान्धाता-पुत्र मुचुकुन्द नामक राजा थे। कालयवन के वहाँ मैंने दर्शन दिया था। अन्य हठीले भक्तों की तरह तुमने माँगा आपके चरणों की सेवा से भिन्न किसी भी वस्तु की मैं इच्छा नहीं करता (भागवत १०।५१।५६) तब मैंने वर दिया अगले जन्म में ब्राह्मण श्रेष्ठ होकर एक मात्र मुझे प्राप्त होओगे। अभी तुम पाँच वर्ष पर्यन्त संसार में रह कर मेरी भक्ति का प्रचार करो और मेरे भक्ति पूर्ण पदों की रचना करो। यही मेरी सेवा है।" इतना आदेश देकर भगवान अदृश्य हो गये किन्तु नरसी बेसुध पड़े रहे तब स्वयं राजा ने उन्हें जगाया।

इस घटना से विपक्षियों के हृदय से अज्ञान नाश होकर भक्ति भाव उदय हो गया। उन्होंने अति लज्जित हो क्षमा याचना की तब नरसी ने प्रेमवश निवेदन किया आप लोग पापकर्मों से दूर रहते हुए प्रीतिपूर्वक भगवान का भजन कीजिये कल्याण होगा। राजा ने जेल से निकाल कर नरसी जी को आदर पूर्वक विदा किया और राजा ने

2089

श्लो॰ सं॰ 104

5/10/84

शम्भु-वन्दना

कर-चरण-कृतं वाक्-कायजं कर्मजं वा
श्रवण-नयनजं वा मानसं वापराधम्।
विहितम् अविहितं वा सर्वम् एतत् क्षमस्व
जयजय करुणाब्धे! श्री महादेव! शम्भो।।

श्लो॰ सं॰ 105

शेष-शायी विष्णु वन्दना

शान्ताकारं भुजग-शयनं पद्म-नाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगन-सदृशं मेघ-वर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मी-कान्तं कमल-नयनं योगिभिर् ध्यान-गम्यम्
वन्दे विष्णुं भव-भय-हरं सर्व-लोकैक-नाथम्।।

२०९०

सं. ६. ९।०६

६।११८५

श्री भगवान के स्वरूप

(स्वामी रामसुखदासजी लिखित गीता की विभूति और विश्वरूप दर्शन के आधार पर संकलित)

महाप्रलय काल में एकार्णव (यानि सब कुछ समुद्र और जलमय हो गया था) के अन्त में परब्रह्म को लीला करने की फिर से इच्छा हुई तब असंख्य ब्रह्माण्डों की सृष्टि की - ये सारे ब्रह्माण्ड ही परब्रह्म का (११।२५)

११।४० : सबसे पहला अवतार था। जिस किसी भी

(गीता ५।२९...)

ब्रह्माण्ड की कल्पना की जा सकती है उन सारे ब्रह्माण्डों के कण कण में प्रभु अखण्ड रूप से विराजमान हैं। और सबके स्वामी भी वही हैं और उनके

प्रत्येक

अंग अंग में प्रत्येक रोम रोम में सारे ब्रह्माण्ड बसे हुए हैं यानि वही सारे ब्रह्माण्डों के वास स्थान हैं उनसे भिन्न अपना उनसे शून्य कुछ है ही नहीं। इसी लिये प्रभु को जगन्निवास और विश्ववास (मानस ७-१४८; ७-९९७) कहा जाता है यानि जिसमें विश्व, जगत का निवास हो अथवा जो कि इनके कण कण में बसता हो। सारे लोकों के उत्पादक होने से जगत्पिता और

एक मात्र स्वामी होने से प्रभु कहा जाता है
लीला के लिये परस्पर विरोधी तत्वों का होना
अत्यावश्यक है अतः त्रिगुण (सत्व, रज,
तम) और प्रत्येक ब्रह्माँड के लिये भिन्न
भिन्न त्रिदेव (ब्रह्मा विष्णु महेश) की सृष्टि
भी की। प्रत्येक वस्तु की आकृति और
प्रकृति भिन्न है अतः एक साथ ही इतनी
असंख्य आकृतियों में परिवर्तन कैसे
संभव है? इस शंका का समाधान भागवत
दशवें स्कन्ध के तेरहवें अध्याय में मिलता है.
जब ब्रह्मा ने सारे गोप बालकों और बछड़ों को चुरा
कर एक साल तक छिपाये रखा था तब श्रीकृष्ण
ने प्रत्येक बछड़े और गोप-बालकों का रूप
उनके सारे सामानों का * धारण किये रखा
उनकी बोली और स्वभाव ढाल दिये सो साल भर
भी भेद नहीं खुल सका। उनकी माताओं तक
को भी पता नहीं चला - यहाँ तक कि ब्रह्मा भी
आश्चर्य चकित हो रहे गये पर कृष्ण के (10-13)
विश्व वास तत्व की मान्यता से ही तुलसी

* क्रिया
[illegible]
एक वर्ष तक धारण करना।

दास जी मानस के वन्दना प्रकरण में कहते हैं

"जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥ (१-७ग)

और भगवान शंकर जी भी ब्रह्मा जी सहित सब देवताओं को अपना मत बताते हैं

"हरि व्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥ (१-१८५)

इसी मान्यता के आधार प्रह्लाद जी ने भी दृढ़ता से कहा था इस खंभे में भी प्रभु हैं।

स्वरूप

परब्रह्म ने सबसे पहले सारे ब्रह्मांडों के रूप में ही सबसे पहला अवतार लिया इसी से आदिनारायण कहलाये (वि।४७) भगवान के स्वरूप के समान किसी का भी स्वरूप न तो है न कभी हुआ और न कभी होगा ही अतः महान स्वरूप वाले अर्थात् महात्मा कहलाये (११५७) जितना कोलाहट है एवं दसों दिशाएँ भी भगवान से व्याप्त हैं (११५७)

सभी प्राणी उन्हीं से उत्पन्न होते, उन्हीं में रहते
और उन्हीं में विलीन भी हो जाते हैं (P124) इस प्रकार
तरह तरह के रंग और ~~रूप~~ तरह तरह की आकृतियां धारण
किये हुए हैं (P128) / विराट रूप में शरीर और
शरीरी के भिन्न भिन्न विभाग नहीं हैं दोनों एक
भगवान ही हैं अतः विश्व रूप और
विश्वेश्वर दोनों ही भगवान ही हैं (P150) /
देश कृत, कालकृत, वस्तुकृत आदि किसी भी
तरह से भी भगवान की सीमा को आंका नहीं
जा सकता, मापा नहीं जा सकता अतः असीम
कहलाते हैं / संतप्त या व्यथित करने वाले
और संतप्त या व्यथित होने वाले दोनों एक ही
विराट रूप के अंग हैं (P156) / भगवान ब्रह्मांड
या संसार के बाहर और भीतर व्याप्त हैं अतः
~~सर्व~~ सर्वव्यापक हैं (P160) / काल रूप भगवान की
जीभ में लपेट से कोई भी प्राणी बच नहीं सकता
(गीता 11-30) / भगवान अनादि और अनन्त
सभी देवताओं के मालिक, नियंता और शासक
होने के कारण देवेश हैं - अनंत सृष्टियां

~~[struck]~~ भगवान के किसी एक अंश में विस्तृत रूप से निवास कर रहे हैं तो भी उनका वह अंश पूरा नहीं होता खाली ही रह जाता है ऐसे अनन्त भगवान जगन्निवास हैं (P २०२) जितने भी प्रकार के योगों की कल्पना की जा सकती है उन सब योगों के मालिक हैं इसलिये योगेश्वर हैं (P २६) भगवान सर्वसमर्थ होने कारण प्रभु हैं (P २५) भगवान की महिमा का आदि अन्त कोई नहीं जान सकता क्योंकि अनन्त हैं कोई भी यदि इसकी थाह ले पाता तो इसकी अनन्तता नहीं रहती वह सीमित हो जाती (P २१०) ||

विराट रूप

परब्रह्म परमेश्वर के विराटरूप यानि उपरोक्त विश्वरूप ही जिसके रोम रोम अंग अंग में बसे हुए हैं दिव्याति दिव्य हैं उसकी प्रत्येक चीजें प्रत्येक रूप ही हैं और सभी कुछ दिव्य ही दिव्य हैं (P १५)

इस विराटरूप को पुरुषोत्तम के सिवा और न तो
कोई देख ही सका और न जान ही
सका और न कल्पना ही कर सका अतः
वेद भी 'नेति नेति' कह कर रह गये।
भगवान की बड़ी विलक्षणता है- जिसे
और जिस अवसर पर जितना ही दि-
देना चाहते हैं अपने रूप का उतना ही
अंश दिखाते हैं। यह दिव्यरूप इन साधारण
चर्म चक्षुओं से नहीं देखे जा सकते
इसको देखने के दिव्यदृष्टि ही एक मात्र
साधन है और यह दिव्यदृष्टि भगवान ही
अत्यन्त अनुकम्पा करते हैं तब कृपा करके
दे देते हैं और जितना दिखाना चाहते हैं
उतना दिखा कर यह दिव्य-दृष्टि भी चली
जाती है यहां तक कि भगवान कभी कभी
अपनी माया फेर कर इस विराटरूप के
दृश्य की स्मृति तक हर लेते हैं और
मनुष्य पूर्ववत हो जाता है। विराट रूप और उसकी
दिव्यता साधारण बुद्धि का विषय है ही नहीं।

इस रूप के दर्शन तो भगवत्प्रदत्त दिव्य-चक्षु की ही सामर्थ्य है (P 135) भगवान के विराट रूप के सामने दिव्य-दृष्टि भी सीमित हो है (P 167) यही कारण है कि अर्जुन भगवान प्रदत्त दिव्य-दृष्टि द्वारा भी पूर्ण विराट-रूप नहीं देख सके (P 152) ऐसा है दिव्यमान स्वरूप है कि और कोई प्रमाण बताने में समर्थ नहीं है (P 163)

रामावतार में — (1) जनकपुर में धनुष यज्ञभूमि में जब भगवान श्री राम पधारते हैं तब "विदुषन्ह प्रभु विराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥ (१-२४२)"

(2) सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी परब्रह्म की स्तुति करते हैं "जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा॥" (१-१८६)

(3) महर्षि वाल्मिकी श्रीराम से कहते हैं

"जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥

तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। और तुम्हहि को जाननिहारा॥" (२-१२६)

राम स्वरूप तुम्हार वचन अगोचर बुद्धि पर

अविगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कहा॥ (२-१२६)

(४) महर्षि अगस्त्य जी श्रीराम से कहते हैं
"ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया।।
जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना।।
ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भय डरत सदा सोउ काला।।
ते तुम्ह सकल लोकपति साईं। पूँछेहु मोहि मनुज की नाईं।।" (३-

(५) जननी कौशल्या जी स्तुति करती हैं —
"ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।" (१-१९२)
और जब श्रीराम मुस्करा कर हँस देते हैं तब मुख में दीखा।
"देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड।।" (१-२०१)
अगनित रबि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन।।
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ।। (१-२०२)

(६) विभीषण जी रावण को समझाते समय कहते हैं —
"तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला।।
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। ब्यापक अजित अनादि अनंता।।" (५-३८)

(७) मन्दोदरी अपने पति रावण को समझाती हैं —
"अति बल मधु कैटभ जेहिं मारे। महाबीर दितिसुत संघारे।।
जेहिं बलि बाँधि सहसभुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महि भारा।।" (६-६)

२०.९.४

(४) मन्दोदरी फिर श्री राम के विश्वरूप का वर्णन करती है,

"बिस्वरूप रघुबंसमनि करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु॥" (६-१४)
पद पाताल सीस अज धामा ...... सचराचर रूप राम भगवाना
(६-१५ क)

(५) काकभुसुंडी जी को श्री राम मुस्करा कर हँस कर मुख के मार्ग से अपने पेट में ले जाकर वहीं पेट में ही अनेक अनेक ब्रह्मांड, और प्रत्येक ब्रह्मांड के अलग अलग ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सब कुछ दिखाते हैं किंतु सारे ब्रह्मांडों में शिशु राम का वही एक ही रूप दिखाते हैं इसका पूरा वर्णन उत्तर कांड दोहा ८० से लेकर ८८ तक दिया हुआ है। ऐसी महती कृपा प्रभु श्री राम ने भुसुंडी जी पर की फिर प्रसन्न होकर वर दिया और कहते हैं: —

"मम माया संभव संसारा। जीव चराचर बिबिध प्रकारा॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाए।" (७-८६)
"अखिल बिस्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबरि दाया॥" (७-८७)

नदियाँ, वन, स्थावर जंगम समस्त प्राणी आदि सब दिखाये — देख कर यशोदा काँपने लगी (१०-८-३६) फिर माया फेरकर उनको बिल्कुल विस्मृत करा दिया।

(२) जब श्री कृष्ण के मिट्टी खाने की शिकायत सखाओं और बलराम जी ने यशोदा के सामने की तब अपनी निर्दोषिता स्थापित करने के श्री कृष्ण ने अपना मुख खोल कर माता को सारा सब कुछ अपने मुख में दिखा दिया तब माता ने उनके स्वरूप को तत्वज्ञान हो गया तुरत प्रभु ने अपनी वैष्णवी माया फैला दी माता सारे दृश्य भूल गयी (१०-८-३७ से ४४ तक)

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी — भगवान के रोमकूप रूप झरोखों में अगणित ब्रह्माण्ड परमाणु के समान आते जाते रहते हैं (१०-१४-११) मेरे मोह हो जाने के समय आप अकेले थे फिर सारे ग्वाल बाल बछड़े और आप ही हो गये, फिर मैंने देखा आपको वे सारी मूर्तियाँ चतुर्भुज स्वरूप हैं और मेरे सहित सारे

२१०२

तत्वों से सेवित हैं तथा आपके अलग-अलग इसने ही ब्रह्माण्डों का रूप भी धारण कर लिया और अब अंत में फिर आपने अपरिमित अद्वितीय ब्रह्म रूप से केवल आप ही शेष रह गये हैं (१०-१४-१८)

गोपियाँ — अक्रूर के आने का संवाद सुना, गोपियाँ ब्रह्मा की ओर को कोसती हुई कहती हैं हम भगवान के एक-एक अंग में सौन्दर्य सुधि का सम्पूर्ण सौन्दर्य निहारती थीं (१०-३९-२१)

चतुर्भुज रूप

(गी २-३१) चतुर्भुज रूप देवरूप है। इसके दर्शन अत्यन्त ही दुर्लभ हैं इसके दर्शन किसी साधन से, किसी योग्यता से, नहीं मिलते सिर्फ अपने अनन्य भक्त पर भगवान अत्यन्त कृपा करते हैं तब उसे अपने चतुर्भुज के दर्शन कराते हैं। देवता लोग भी चतुर्भुज रूप के दर्शन के लिये नित्य लालायित रहते हैं। नित्य लालसा का अर्थ है नित्य निरंतर एक परमात्मा की ही

लालसा लगी रहे और दूसरी कोई भी लालसा नहीं रहे। देवता लोगों को अपने देवत्व और पद का अभिमान रहता है। देवता अपने भोग भोगने में ही लगे रहते हैं और भगवान को याद तक करने का वक्त ही उनके पास नहीं रहता अतः चतुर्भुज रूप के दर्शन इनको नहीं होते (P २५०-२५१) कितनी महान क्रिया क्यों न हो, कितनी ही महान योग्यता क्यों न हो इनके भगवान खरीदे नहीं जा सकते। भगवान की प्राप्ति तो केवल उन्हीं की कृपा से ही होती है और वह कृपा तब प्राप्त होती है जब मनुष्य अपने में सब प्रकार की अयोग्यता का अनुभव करता हुआ उन पर ही सब प्रकार आश्रित रहता है तब भगवान तत्काल प्रकट हो जाते हैं। (P २५२-५३) भगवान श्री राम और श्री कृष्ण द्विभुज रूप में ही रहे कभी किसी पर विशेष कृपा करनी हुई तो

भक्त के भावानुसार चतुर्भुज दर्शन दे दिये। क्रमशः—

२१०५

रामावतार में :-

(१) माता कौशल्या जी को — जन्म के समय

"लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा निज आयुध भुज चारी"

(२) सुतीक्ष्ण जी को — उनके सामने प्रगट होने पर भी जब उनका ध्यान नहीं टूटा तब ध्यान तोड़ने हेतु

"भूप रूप तब राम दुरावा। हृदय चतुर्भुज रूप देखावा॥" (3-10)

गीता में :-

अर्जुन जब विराट रूप देखकर भयभीत हो गये तब देवरूप चतुर्भुज रूप दिखाने की प्रार्थना करने पर कृपा करके चतुर्भुज रूप दिखाया (गीता ११-५० १२३६) और विश्वरूप के दर्शन

श्रीकृष्णावतार में :-

(१) पिता माता वसुदेव जी और देवकी जी को जन्म के अवसर पर (१०-३-९)

(२) सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी को — एक साल तक

क्रीडा भाग — ब्रह्मा द्वारा गोपबालकों और बछड़ों के छिपाये रखने के कारण आप ही प्रत्येक बालक

और बछड़ों का अपना रूप धारण कर रखा था
तब अन्त में ब्रह्मा जी के देखते देखते सभी ग्वालबाल
और बछड़े कृष्ण रूप दिखलाई देने लगे
और उनके चार भुजाएं थीं जिनमें शंख
चक्र गदा और पद्म धारण किये थे। (10-13-)

(3) अक्रूर जी — श्री कृष्ण और बलराम जी को
रथ में बैठाकर मथुरा के मार्ग में यमुना के कुंड
(यमुना तीर्थ में) स्नान करते समय जल में और
रथ में और एक ही समय दोनों भाइयों को देखकर
अपना भ्रम मिटाने के लिये जब फिर से जल में
डुबकी लगाई तब शेष जी की गोद में चतुर्भुज भगवान
को विराजमान देखा (10-39-46)

(4) मुचुकुन्द जी — गुफा में गाढ़ निद्रा में सोये
हुए को जगाने के कारण जब कालयवन भस्म हो
गया। इसके बाद भगवान श्री कृष्ण ने उस
गुफा में ही चतुर्भुज रूप से दर्शन दिये (10-51)

(5) रुक्मिणी जी — श्री कृष्ण द्वारा हंसी विनोद में
कहे गये अप्रिय वचन से चिंतित हो जब रुक्मिणी
जी मूर्छित हो गिर पड़ी तब पति ने सांत्वना देने

२१०६

के लिये भगवान ने चतुर्भुज रूप धारण कर उन्हें उठाया और उन्हें सान्त्वना देते हुए अपनी भुजाओं से आलिंगन किया (१०-८०-२८)

(घ) जरासंध के बंदी राजाओं को.

जरासंध को भीमसेन द्वारा मरवा कर बीस हजार आठ सौ को जब उसके कारागार से मुक्त किया तब दुर्ग से निकलने पर उन सारे राजाओं को चतुर्भुज रूप का दर्शन दिया (१०-७३-३)

(ङ) लक्ष्मणा को विवाह के लिये हरण करते समय भगवान श्री कृष्ण चतुर्भुज रूप धारण कर लक्ष्मणा को अपने रथ में चढ़ाया (१०-८३-३२)

एक ही रूप के अनेक तन एक साथ धारण

रामावतार में :—

(१) चित्रकूट में अयोध्यावासियों के पहुँचने पर भगवान श्री राम पल भर में सबसे अलग अलग मिलकर उनकी विरह वेदना को दूर किया—

"सानुज मिलि पल महुँ सब काहू। कीन्ह दूरि दुखु दारुन दाहू॥"
(२-२४४)

(२) वनवास से फिरती लौटने पर अयोध्यावासियों से अलग अलग मिले एक ही साथ

"अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहि कृपाला॥"
(७-६)

(३) किष्किन्धा में वानर सेना के प्रत्येक सैनिक से अलग अलग कुशल क्षेम पूछते हैं

"अस कपि एक न सेना माहीं। राम कुसल जेहि पूछी नाहीं॥
यह कछु नहिं प्रभु कइ अधिकाई। बिस्वरूप ब्यापक रघुराई॥
(४-२२)

(४) कौसल्या जी को एक ही रूप के दो जगह दिखकर शिशु राम दीखे।

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मतिभ्रम मोर कि आन बिसेषा॥
(१-२०१)

(५) भ्रम-प्रिया सती जी को —
सती जब प्रभु की परीक्षा लेने गयी थीं —

जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न बेष घनेरे॥ (१-५४)

(६) काकभुसुण्डी जी को — प्रलय के समय सब में एक ही राम को देखना

अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउँ आन।
प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा। देखउँ बालबिनोद अपारा॥ (७-८१)

कृष्णावतार में (भागवत)

महारास के समय जितनी गोपियाँ थी उतने ही रूप धारण कर लीलापूर्वक उनके साथ विहार किया (१०-३३-२०)

अक्रूर जी ने जल में भिन्न भिन्न रूप के दर्शन किये (१०-३९)

उनकी प्रत्येक रानी उन्हें कहीं भी न जाकर निरन्तर अपने अपने महल में ही रहते देखती (१०-६९)

नारद ने प्रत्येक पत्नी के महल में एक ही साथ एक ही कृष्ण को उपस्थित देखा (१०-६९-४१)

भगवान् कृष्ण ने भिन्न भिन्न भवनों में भिन्न भिन्न रूप धारकर एक ही मुहूर्त में १६१०० राजकन्याओं के साथ विवाह पाणिग्रहण किया (श्रीमद्भागवत (१०-५९-४२) और २१०९ रानियों के महलों में जाकर विभिन्न रूप धारण कर उनमें साथ रमण किया करते थे (१०-६९-५)

एक ही तन में विभिन्न रूप —

<u>रामावतार</u> में

जनकपुर में धनुष भंग शाला में प्रवेश करने पर दर्शकों ने अपनी अपनी भावना के अनुसार भिन्न भिन्न रूप देखा।

"जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी (२-२४१)

<u>कृष्णावतार</u> में — मथुरा में कंस मल्लशाला में प्रवेश करने पर भिन्न भिन्न अधिकारियों की दृष्टि में एक ही समय में भगवान ने ग्यारह भावों को दिखाया (१०-४३-१७)

२।१०

ह० लि० सं० 107

17/10/84 विश्व रेडियो टेप (संकलित)
(पृष्ठ 1976 से आगे)

(४०८) मनुष्य करने में स्वतंत्र है और फल-प्राप्ति में परतन्त्र है। पिछले कर्मों के फल स्वरूप मिलने वाली परिस्थिति रूपी बुराई को मनुष्य बदल नहीं सकता।

(४०९) प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करके उसको अपने उद्धार की साधन-सामग्री बनाया जा सकता है किन्तु उस परिस्थिति से सुखी या दुःखी होना दोनों ही मूर्खता है। सुख-दायक परिस्थिति में दुःखियों की सेवा करना और दुःख-दायक परिस्थिति में सुख-भोग की इच्छा का त्याग करना ही उस का सदुपयोग है। सुखदायक में पुण्य क्षीण होते हैं और दुःख दायक में पाप क्षीण हो रहे हैं, प्रायश्चित हो रहा है और भविष्य के लिये चेतावनी मिलती है कि पाप करने से फल में दुःख ही मिलेगा।

(४१०) भगवान्‌ के नाम, लीला, गुण आदि के कीर्तन से सभी पर असर पड़ता है सभी हर्षित होते हैं चाहे उनको ऐसा पता चले या न चले पर होता ऐसा ही है।

(४११) अपने स्वयं के बल और अभिमान को छोड़ कर स्वयं को सब प्रकार भगवान पर छोड़ देने से सारी जिम्मेवारी भगवान की हो जाती है

(४१२) मनुष्य अपने ऊपर भगवान की जितनी कृपा मानता है उससे कई गुनी कृपा होती है। उस कृपा को मानने जानने की सामर्थ्य मनुष्य में है ही नहीं। अतः अनुकूलता में ही कृपा मानना तो उस असीम कृपा को सीमा में बांधना है और उस कृपा में राजी होना कृपा को भोग है अतः उसे सीमा में बांधो और न भोगो ही सुख दुःख में सम ही रहो।

(४१३) भगवान और उनके भक्तों की कृपा से जो काम होता है वह साधनों से नहीं होता। भगवत्कृपा अहेतुकी होती है।

२०१२

(४१४) शरीर में अहंता ममता होने से ही भय होता है। सर्वत्र भगवत्‌ भाव रखने वाले और एकमात्र भगवान में ही प्रेम करने वाले सदा प्रसन्न रहते हैं।
(४१५) जब मनुष्य मोह से संसार में आसक्त हो जाता है तो भगवान की दी हुई विवेक दृष्टि भी काम नहीं करती।
(४१६) होनहार तो होकर ही रहेगी। अनहोनी होवे नहीं और होनी टले नहीं।
(४१७) साधन के सारे विघ्न नाशवान हैं उनको ज्यादा महत्व ही दो और न चिन्ता ही करो।
(४१८) जो वस्तु तुम्हारे हृदय में बसी रहती है वही मिलती है।
(४१९) किसान की नाई एक ही भगवान विश्व भर के उत्पादक, पालक और संहारक हैं।
(४२०) शिव वही तत्व है जो समस्त प्राणियों की विश्राम स्थान है। शिव के हृदय में राम और राम के हृदय में शिव हैं।

(४२१) बिना भक्ति-श्रद्धा के भी गुरु विश्वास राम नाम लेने से कृतार्थ हो जायगा। कलियुग में भगवान नाम रूप से ही प्रगट हैं।

(४२२) अपने से बड़ों को नित्यप्रति निष्काम भाव से नमस्कार करने से अहंकार का नाश होता है। सबसे हँसकर बोलो। किसी की आत्मा में दुःख पहुँचे ऐसा काम मत करो। सांसारिक भोगों का त्याग करो। कर्मों को बाहर और भीतर से त्याग कर देना ही वास्तविक त्याग है।

(४२३) स्वतंत्र न रहकर परतन्त्र रहना श्रेयस्कर है।

(४२४) जिसका मन एकाग्र हो, विषयों से उदासीन हो, किसी नवीन विषय की इच्छा न रहने से भगवान की प्राप्ति होती है। ईश्वर में प्रेम होने से विषय प्रेम दूर हो जाता है।

(४२५) एकांत में रहने का अभ्यास हो। निंद्रा, आलस्य आवे तो उच्च स्वर से सद्गुरु का नाम-जप करे।

(४२६) सब प्रकार के दुःख को शांतिपूर्वक सहो।

(४२७) अपने को सबसे छोटा समझो, ध्यान कर, कम बोल, सबकी सेवा कर, दीन पर दया कर, ईश्वर में विश्वास कर।

२०।५

(४२८) भजन मंगल है। संसार-मंगल भी मंगल है।
(४२९) भगवान अधिकार अनधिकार की परीक्षा नहीं करते। उनकी कृपा दैत्य लोगों पर होती है और दैत्यों का भी कल्याण करते हैं। सभी प्राणियों के प्रति प्रभु की सहज करुणा रहती ही है।
(४३०) अपने हृदय में दृढ़ निश्चय कर लें कि मुझे तो परमात्मा की तरफ ही चलना है यह सम्पूर्ण साधनों की मूल साधना है।
(४३१) जब तक जीव गर्भ में रहता है उसे ध्यान, वैराग्य और पूर्व जन्मों की स्मृति बनी रहती है बाहर आते ही माया के प्रभाव से सब कुछ भूल जाता।
(४३२) शान्ति, धैर्य और विश्वास ये सुख और सम्पत्ति के साधन हैं।
(४३३) समय पर ही भाग्य फलता है।
(४३४) जिसके हृदय में दया है उसके पास दुःख नहीं आ सकता।
(४३५) जो जीव निर्मल, दयालु, दीनता वाला हो, ईश्वर का भजन करता हो तो अधिक काल तक रहने वाला दुःख भी उसका नाश नहीं कर सकता।

२०15

(४३६) अपनी भूल समझ में आ जाय तो फिर दूसरे की भूल देखने का अवसर बहुत ही कम रह जाय
(४३७) स्वभाव बहुत कठिनता से बदला जाता है पर स्वभाव बदलना ही हो तो अपना ही स्वभाव बदलने की चेष्टा करना चाहिये।
(४३८) हमारे प्रति जिसका जो व्यवहार होता है वह असल में भगवान की ओर से ही होता है।
(४३९) आप की निंदा करनेवाले आप के दोष प्रकट करके निकाल देना चाहते हैं
(४४०) अपनी सारी योग्यता और शक्ति प्रभु चरणों में अर्पित कर साधन-भजन प्रभु शरण ग्रहण कर।
(४४१) स्वयं को सब से श्रेष्ठ मानना प्रभु को पसन्द नहीं और अपने कर्त्तव्य का बदला चाहना भी नहीं भाता
(४४२) अपने को नीचा मानने वाले को प्रभु ऊँचा और ऊँचा मानने वाले को नीचा करते हैं।
(४४३) सब पदार्थ में प्रभु की कारीगरी देख, सदा प्रभु-स्मरण, प्रभु प्राप्ति की इच्छा रख।
(४४४) हमेशा अपनी मृत्यु को सामने देख
(४४५) प्रभु भजन में अपने आप को लिया दे।

(४५५) भजन के विघ्न — लोक में मान-प्रतिष्ठा, ख्याति, धन-लाभ, स्त्री में आसक्ति, इच्छित वस्तु मिलना

(४५६) भगवत्प्राप्ति के लिये आवश्यक व्यवहार — सहनशीलता, सभ्य-धर्मशीलता, प्राप्त पदार्थ भी भोगने की इच्छा नहीं होना, इष्ट का सतत चिंतन,

(४५७) कल्याण के लिये आवश्यक — जप, ध्यान और स्वाध्याय

(४५८) जिस काम से भगवत् चिंतन में कमी आवे उसको त्याग दो। जिसकी भजन में आसक्ति नहीं उसे संसार में नहीं रहना चाहिये। सत्संग करें।

(४५९) भक्त, ज्ञानी और योगी को व्यर्थ बात करने की प्रवृत्ति नहीं रहती।

(४६०) भक्त को भगवत् निष्ठा से विचलित नहीं होना चाहिये।

(४६१) नाम कीर्तन ही परम ध्यान, तपस्या, परमतत्व है

(४६२) जितना सुगमता से सहा जा सके उतना कष्ट उठा कर भी दूसरे को सुख पहुँचा। दूसरों को एक नम्बर का सुख और अपने लिये दो नम्बर का सुख।

२।।४

(४६३) दूसरों को सुख पहुँचा - प्रभु के लिये आशा
मत रख। उनकी न्याय-पूर्वक माँग अपनी
शक्ति भर पूरी कर दो - तुम्हारी शक्ति से बाहर
माँगें तो माफी माँग लो। इस पर भी यदि
कोई कलह करे तुम्हें दुःख दे तो समझो
मेरे पाप नष्ट हो रहे हैं, मेरा भला ही हो
रहा है। पर उसको न दुःख दो न तिरस्कार करो
दूसरों को सुख देते-देते सुख देने की एक शौक
लग जाती है प्रभु-प्राप्ति का सीधा रास्ता है यह।
(४६४) धन का दास प्रभु का दास नहीं हो सकता
(४६५) पति और बच्चों के साथ रहकर घर में ही
भजन करें।
(४६६) जो चिन्ता न करे वही तो वैराग्यवान है।
वैराग्यवान तो प्रभु का चिन्तन करता है।
(४६७) जिसके जीवन में धर्म का स्थान प्रधान नहीं
उसे कभी शान्ति नहीं मिलती।
(४६८) मिल भाव बनाओ तो सत्य का जीवन बने
(४६९) मन को बिल्कुल पवित्र रखो क्योंकि
मन तो छूटने के बाद भी साथ जायेगा।

(४८०) जीवन में जब तक कोई दलिल लक्ष्य निश्चित नहीं होगा; पाप कर्म नहीं रुकेंगे।
(४८१) स्वर्ण-दान से भी ज्ञान-दान श्रेष्ठ है।
(४८२) जिसने समय की कीमत नहीं की वह अन्त काल में रनुब पछताता है।
(४८३) देह-पूजा नहीं कि देव-पूजा सच्ची।
(४८४) देने के भाव से समाज में एकता, प्रेम उत्पन्न होता है और लेने के भाव से संघर्ष उत्पन्न होता है।
(४८५) भगवान के साक्षात् दर्शन होना या चित्त शुद्ध करने से भगवान का उच्चारण होते रहने में कोई भी भेद नहीं है बल्कि नाम से नामी भिन्न नहीं है। इसी हेतु पुकार के हमने अपनी ओर प्रमाणित किया है। नाम की उपलब्धि होने पर भी नाम को ही सर्व श्रेष्ठ समझो। प्रेम में कभी तृप्ति होती ही नहीं। प्रतिक्षण उत्कंठा का बढ़ना ही प्रेम का स्वरूप है। उसे बढ़ाने के लिये ही प्रेम में विरह उत्पन्न किया जाता है। प्रेम अग्नि है तो विरह इंधन। बाह्य अनुभवाग

२१२०

ॐ जब निराशा होती है तब निर्भयता आती है
नाम ही साधन है, नाम ही साध्य है
जैसे भी हो नाम का कीर्तन करो। मन नहीं
लगे तो भी मन ही कीर्तन करते जावो
जीभ समर्थ न हो तो कानों से सुनो, हठ
पूर्वक भी सुनो। जब समय मिले तभी कर
लो, थोड़ा भी कर लो, सोते समय और
जागते समय नाम करे। नाम कभी
निष्फल नहीं जाता, वह तो पापों का नाश
करेगा ही।

(४८६) कोई कितना ही शक्ति सम्पन्न हो प्रभु चरणों
का सहारा लेते हुए ही चलना चाहिये।

(४८७) जिसका न साधन है और न प्रभु पर विश्वास
ही है वह भी यदि आतुर होकर पुकारे तो
अनन्य शरण होने पर प्रभु कृपा करते हैं।

(४८८) नाम ही भक्ति, भाव, प्रेम, स्वयं प्रभु है। नाम ही
ध्येय, ध्यान, साध्य, साधन, उपाय है। नाम ही
पूजा, उपचार है।

(पृष्ठ २१३० में देखें)

13-11-84 जनरंजन इतिहास पद (८-२४)

परब्रह्म के सगुणस्वरूप के उपासकों को श्री हरि-पद इतनी उच्च कोटि का एवं एकान्तिक होता है, वह लोग प्रभु की भक्ति के ऐसे रसिक होते हैं कि उनकी दृष्टि में श्री हरिभक्ति की तुलना में सांसारिक बात तो कहना ही क्या है मोक्ष तक का चरम कोटि का पारमार्थिक लाभ भी कुछ भी महत्व नहीं रखता, मुक्ति का वरदान मिलने पर भी उसे सादर अस्वीकार करने में तनिक भी नहीं हिचकते। उन्हें तो केवल अपने प्रियतम प्यारे प्रभु पद कमलों की अविरल भक्ति ही भाती है। ऐसे हठीलों को जनरंजन महादानी प्रभु अपनी भक्ति दे डालते हैं।

२१२२

"सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं।
तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं॥
(६-११२)

श्रीराम-चरितमानस और श्रीमद्भागवत में ऐसे भी प्रसंग आये हैं जहाँ भक्त केवल वर्तमान जीवन की श्री हरि-पद भक्ति से ही संतुष्ट नहीं हुए और उन्होंने भविष्य में होने वाले अपने सभी जन्मों में श्री हरि के अनन्य भक्त रहकर अपने सारे के सारे जन्मों को सुधारना ही वाँछित है। यथा:-

(१) श्री भरतलाल तीर्थराज प्रयाग से यही भीख माँगते हैं-

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आनु॥

(२) महात्मा बालि— प्रभु-शर लगने से घायल पड़ा हुआ है, अपनी मृत्यु के कारण

गिर रहा किंतु सम्मुख खड़े प्रभु श्रीरामचन्द्र सरकार से अपनी वसीयत (अंतिम इच्छा) रूप में माँग रहा है---

जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ ।।
(४-१०)

(३) सृष्टि कर्ता ब्रह्माजी — यदुनाथ प्रभु श्री कृष्णचन्द्र द्वारा मोह-नाश किये जाने पर सिर झुकाये अत्यन्त सावधानतापूर्वक गद्‌गद वाणी से स्तुति करने बाद भगवान श्री कृष्ण से प्रार्थना करते हैं "प्रभो! मुझे ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो जिससे कि मैं इस जन्म में या दूसरे जन्म में या किसी तिर्यग-योनि में ही जन्म लेकर आपके दासों में से एक होकर आपके चरण कमलों की सेवा कर सकूँ।।" (भाग. १०-१४-३०)

(४) मूर्तिमती लक्ष्मीजी ~~रुक्म~~ श्री रुक्मिणीजी भगवान श्रीकृष्ण से अपनी आन्तरिक अभिलाषा करती हुई निवेदन करती हैं "प्रभु मेरी यही अभिलाषा है कि अपने कर्मानुसार भिन्न भिन्न योनियों में भ्रमती हुई मैं सदा, अपने भजने वालों का मिथ्या संसार-भ्रम निवृत्त करने वाले तथा उन्हें अपना स्वरूप तक दे देने वाले, आप परमेश्वर के चरणों की शरण में रहूँ।। (भागवत १०-६०-४३)

(५) महर्षि वसिष्ठजी:— रघुवंश के राज-पुरोहित त्रिकाल-दर्शी वसिष्ठ जी भगवान श्रीराम से प्रार्थना करते हैं:—

नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु।
(७-४९)

(६) श्री कृष्ण की रानी – मित्रविन्दा – द्रौपदी को अपने विवाह का वृत्तान्त सुनाते हुए कहती है "मैं श्री हरि के पाद-प्रक्षालन का सौभाग्य मुझे प्रत्येक जन्म में प्राप्त होता रहे" (१०-८३-१२)

(७) श्री कृष्ण की रानी – भद्रा ने भी द्रौपदी को अपने विवाह का वृत्तान्त सुनाते हुए कहा "अपने कर्मानुसार मैं संसार में जहाँ जहाँ जाऊँ वहाँ जन्म-जन्म में मुझे इन्हीं का चरण स्पर्श प्राप्त हो, ~~क्योंकि~~ क्योंकि आराध्य का परम कल्याण इसी में है (१०-८३-१६)

(८) श्री नन्द बाबा जी – विदा करते समय वसुदेव से कहते हैं "कर्मों के कारण घूमते हुए हमारा भगवान की इच्छा से जहाँ-जहाँ जन्म हो वहीं हमारे शुभ कर्म और दानादि के परिणाम से हमें भगवान कृष्ण की भक्ति प्राप्त हो" (१०-४७-६७)

२१२६

(९) राजा नृग – मृत्यु के बाद गिरगिट बना फिर श्री कृष्ण के कर का परस से देवरूप हो देवलोक जाने के पहले प्रार्थना करता है "मैं कहीं भी रहूँ, मेरा चित्त सदा आपके चरणों में लगा रहे" (१०-६४-२८)

(१०) सुदामा जी – मुझे जन्म-जन्म में उन्हीं का सौहृद, सख्य, मित्रता, दासता प्राप्त हो तथा उन्हीं के भक्तों का संग मिले (१०-८१-३६)

२०-११-८४ मधुराधिपति

(महात्मा श्रीमद्वल्लभजी) (मधुराष्टक)

अधरं मधुरं वदनं मधुरं
नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥१

वचनं मधुरं चरितं मधुरं
वसनं मधुरं वलितं मधुरम्।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥२

वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरं
पाणी मधुरः पादौ मधुरो।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥३

३।२४

गीतं मधुरं पीतं मधुरं
भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम्।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ॥४

करणं मधुरं तरणं मधुरं
हरणं मधुरं रमणं मधुरम्।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥

गुंजा मधुरा माला मधुरा
यमुना मधुरा वीची मधुरा
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्

गोपी मधुरा लीला मधुरा
युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरं।
दृष्टं मधुरं मिष्टं मधुरं
मधुराधिपत्तेरखिलं मधुरम्।

गोपा मधुरा गावो मधुरा
यष्टिर्मधुरा, सृष्टिर्मधुरा।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥८

चा-नाम्क

बिखरे मोती (३) (संकलित)

(पृष्ठ २१२० से आगे)

(४७९) दिन में सोना, और रात में भी छः घंटों से ज्यादा सोना त्याग है।

(४८०) भगवान के किसी रूप से, किसी चिह्न से, किसी लीला से परहेज नहीं। सर्वत्र अपने प्रभु का अनुभव करना भक्ति का स्वभाव है।

(४८१) बीच बीच में साधन-पथ का क्रम भले ही भंग हो जाय, भक्ति-मार्ग में स्खलन और फल-हानि नहीं है।

(४८२) चाहे घर मत छोड़ो, किंतु प्रत्येक वस्तु प्रभु को अर्पित करके प्रसादी के रूप में ग्रहण करने से कर्म-बंधन में नहीं बंधोगे।

(४८३) भगवान आप्त-काम भी नहीं हैं वे तो भक्त के द्वारा अर्पित की हुई छोटी से छोटी चीज के भी भूखे हैं। भगवान कृतघ्न भी नहीं हैं वे भक्तों के उपकार मानते हैं और अपने को उनके सामने ले जाने में भी सकुचाते हैं

(४८४) भगवान भक्त में कोई दोष नहीं रहने देते।

(४८५) मृत्यु मुहूर्त देखकर या विचार करके नहीं आती और न मरने वाले को ही पहले से बतलाती कि वह कब और कहाँ मरेगा अतः भगवान का स्मरण हर क्षण करते रहो, दुनिया की टीका टिप्पणी या दुःख सुख की ओर ध्यान न दो। ([illegible])

(४८६) भगवान की कृपा का स्वरूप हम इसलिये पूरी तरह नहीं पाते क्योंकि वस्तु स्थिति हमारे सामने पूर्णतः स्पष्ट नहीं है।

(४८७) सुख से अधिक दुःख ही शिक्षा देता है क्योंकि निन्दा के प्रहार सहकर हमारी अन्तर्ज्योति जगती है।

(४८८) शुद्ध भूमि में सात्विक भाव जगते हैं, भूमि का प्रभाव मन पर पड़ता है। भोग भूमि नर्क में आवश्यक है। गंगा-तट ध्यान भूमि है।

(४८९) सत्कर्म के लिये प्रेरक भी पुण्य का भागी है।

(४९०) कथा में भजन में प्रभु का जय जयकार करो जयकार उत्कर्ष का सूचक है अतः तुम्हारी भी जय होगी।

(४९१) भगवान के हृदय-प्रवेश के लिये हमारे हृदय में

अ्रां हवें अ्रौर कांन हमारे साधन हैं।
(४५२) श्री रामचन्द्र और श्री कृष्णचन्द्र दोनों ही प्रभु के पूर्ण अवतार हैं। रामायण और भागवत क्रमशः दोनों की शब्दमयी मूर्ति
(४५३) प्रेमिका से जैसा प्रेम करते हो वैसा प्रेम प्रभु से करो। प्रेम करने योग्य तो प्रभु ही है। प्रभु नित्य हैं, उनका प्रेम अमृत है।
(४५४) कारण-रूप ब्रह्मा, विष्णु, शिव प्रसिद्ध हैं
(४५५) भगवान क्रिया-साध्य नहीं है प्रत्युत कृपा-साध्य हैं। साधनों से उसे खरीदा नहीं जा सकता, अपना सब कुछ भूल कर उनका हो जाने से ही उनकी कृपा मिलती है।
- "जा मैं तैं रवें और को जा सो हि है देखन देखें"
यदि हम भगवान के बिना नहीं रह सकते तो भगवान भी हमारे बिना नहीं रह सकते।
(४५६) जब साधक का एकमात्र उद्देश्य प्रभु-प्राप्ति का हो जाता है तब सब कुछ उसकी साधन-सामग्री बन जाती है।
(४५७) भगवान की ओर ले जाने वाले सब साधन स्वधर्म और संसार की ओर ले जाने वाले परधर्म हैं

(४९९) कामना उत्पन्न होते ही प्रभु से विमुख और संसार के सम्मुख हो जाता है।

(४९९) कामना की पूर्ति में मनुष्य समर्थ नहीं है किन्तु इसके त्याग में वह स्वतंत्र, अधिकारी, योग्य समर्थ है

(५००) न लौकिक इच्छाओं की पूर्ति की आशा ही रहे और न पारलौकिक इच्छा पूरी न होने पर निराश हो।

(५०१) जो प्रभु में मुग्ध होते हैं वह प्रभु भक्त में आते हैं।

(५०२) जो दूसरों को कष्ट नहीं देता उसे दूसरे भी कष्ट नहीं देते

(५०३) जो तलवार उठायेगा वह तलवार से ही मरेगा (ईसा)

(५०४) प्रभु-नाम का नशा वह नशा है जिसकी खुमारी दिन रात नहीं उतरती (नानक)

(५०५) मरने वाले को कोई बचा नहीं सकता और बचने वाले को कोई मार नहीं सकता।

(५०६) जो वस्तु हृदय से मांगता है वही अंत में मिलेगी

(५०७) जो भी कुछ अनुकूल प्राप्त हो जाय उसमें त्याग भाव रखने वाला मनुष्य प्रभु को प्यारा होता है। जो होता है उसे प्रभु की ही लीला समझ कर देखते रहो।

(५०८) विषय वस्तु आदि व धन की प्राप्ति हो तो उसे
हर्ष प्रसन्न न करे और न उससे द्वेष करके उसे
उठा कर बाहर भी फेंक दो।
(५०९) सबको प्रभु का स्वरूप समझो। संसार
की हर घटना को प्रभु की लीला ही समझो।
(५१०) भोग सारे ही पुण्य-फल हैं और नश्वर हैं।
चित्त की शान्ति ही सुख और अशान्ति ही
दुख है। अशान्तस्य कुतः सुखम्।
प्रारब्धानुसार जीवन के आवश्यक भोग
मिल ही जाते हैं अतः इसकी चिंता करना
व्यर्थ है। प्रभु विश्वम्भर हैं वे प्राणिमात्र
का पालन-पोषण करते हैं। रह
निश्चिन्त, मस्त फिकर प्रभु हाथ सौंपे
(५११) निष्काम भजन अथवा चर्चा में कोई
भी ~~[illegible]~~ आडम्बर न हो।
(५१२) दूसरे के नुकसान करने से भला नहीं।
(५१३) प्रभु महादानी हैं, इनके पास एक ही नियम है
कि प्रभु के चरणों में समर्पित हो जाओ। प्रभु
की भक्ति आत्मधर्म है, इस दशा में कल्याण या
करती है।

(५१४) जो सब में रमें और सब उसी में रमें उसका नाम राम है। राम-नाम जप महानतम साधन है साथ साथ सुगम भी बहुत है। राम-राम जपना मत छोड़ो इसके सिवाय कोई निस्तार नहीं है।

(५१५) प्रभु जिस स्थिति में रखें उसी में रह कर आनंद मनावे और उसी स्थिति में प्रभु का भजन करते हुए जीवन सार्थक करे - वह स्थिति प्रभु ने तेरे मंगल के लिये ही दी है:-

(क) एकनाथ जी को सुयोग्य पत्नि मिली थी लेकिन हते प्रभु ने स्त्री का संग नहीं, सत्संग ही दिया है।

(ख) तुकाराम जी को पत्नि कर्कशा थी किंतु वे इसे प्रभु का उपकार ही मानते थे कि यदि अच्छी और सुंदर पत्नि मिली होती तो उसके पीछे लगे रह कर प्रभु को भी भूल जाता (जाता)। ऐसी कर्कशा पत्नि मिलने पर भी भला ही हुआ है।

(ग) नरसी मेहता - की मृत्यु हो गयी तो

उन्होंने इसे अच्छा ही मान कर कहा कि
"अच्छा हुआ कुटुम्ब का झंझट छूटा।
अब मैं सुख से निश्चिन्त मन से
भजन कर सकूँगा।"

तीनों ही महात्मा अपनी-अपनी
परिस्थिति में संतुष्ट हैं। "जाहि विधि
राखे राम, ताही विधि रहिये"

(५१६) पिंडदान का सही अर्थ है परमात्मा
को इस शरीर को अर्पित करना है
आध्यात्मिक, तात्विक पिंडदान है।
शरीर को पिंड करते हैं। अपनी आत्मा
का उद्धार स्वयं ही करना है।

(५१७) मनुष्य पुण्य बिना किये ही फल की इच्छा
करता है और पाप करते हुए भी पाप
के फल को नहीं चाहता है।

(५१८) पाठ शांत चित्त से करो। समझे बिना
और अति शीघ्रता से पाठ मत करो।

(५१९) उच्च-स्वर से जप-पाठ करने से मन एकाग्र
होता है उसका निरोध होता है।

(५२०) विषय-बुद्धि वालों से भगवान बहुत दूर हैं
विषय-बुद्धि के बिना भगवान मिलते हैं।
तन मन सम्बन्ध उपरति करके उसके लिये
छटपटाने से प्रभु-कृपा अवश्य होगी।

(५२१) ईश्वरीय शक्ति के आगे मनुष्य का कोई अस्तित्व
नहीं है। सभी कार्य ईश्वर के द्वारा ही होते हैं।

(५२२) अच्छे और बुरे दोनों से सीखते हैं।

(५२३) ऐसा हो जाय और ऐसा न हो जाय इन
दोनों कामनाओं को त्याग देने से संसार-
सम्बन्ध-विच्छेद होने से भगवत्कृपा प्राप्त होगी।
अभी तक किसी की सब कामना पूरी नहीं हुई।
हमारे चाहने से क्या होता है — इससे प्रभु प्राप्ति
में बाधा आने के सिवाय कुछ नहीं होता।

"मेरी चाही मत करो मैं कहूँ समझाय।
तेरी चाही मैं करूँ, है तेरे कल्याण॥"

जो प्रभु से कुछ नहीं चाहता, प्रभु उसके ऋणवान हो
आज तक एक भी ऐसा प्राणी नहीं हुआ, जिसे
कभी दुःख न मिला हो और सुख-ही-सुख
मिला हो।

(५२४) प्रभु के प्रत्येक नाम में चिंता दूर करने की अद्भुत क्षमता है।

(५२५) महापुरुषों में विरक्त और गृहस्थ दोनों ही होते हैं गृहस्थ न्यायोपार्जित धन के त्यागी और विरक्त धन के सर्वथा त्यागी होते

(५२६) प्रभु में आसक्ति के उपाय:-(१) नाम जप (२) ध्यान (३) गुण-गान/स्मरण (४) पूजा प्रभु में आसक्ति का अर्थ है दृढ़ अनुराग

(५२७) वैराग्यवान वह है जो अत्यन्त विनम्र है।

(५२८) घर में सौरी-सूतक के समय भी जप किया जा सकता, पर मानसिक हो तो अच्छा.

(५२९) अनादर करने वाले से लड़ो मत।

(५३०) मुनि वह है जो निन्दा और स्तुति नहीं करता

(५३१) व्याख्यान, प्रवचन, स्तव, स्तोत्र-पाठ, कथा ये सभी कीर्तन के रूपक हैं।

(५३२) मनुष्य जिसकी जरूरत मानता है उसकी परतन्त्रता हो ही जाती है।

(५३३) श्रीजी (राधाजी) साढ़े ग्यारह महीने पहले प्रकट पीछे श्री कृष्ण प्रकटे यानि

पहले प्रभु की तरफ हमारा खिंचाव होगा तब पीछे प्रभु प्रगट होते हैं। यदि प्रभु का चिन्तन करते करते प्रेम हो जाता है तो उससे प्रभु प्रकट हो जाते हैं।

(५३४) जब तक भोगों में आसक्ति रहती है तब तक प्रभु में रुचि नहीं होती। प्रभु में रुचि हो जाती है तो फिर हो ही जाती है फिर कभी अरुचि हो ही नहीं सकती।

(५३५) जब जप आदि से शरीर या मन थक जाय तब आराम के समय शास्त्रों को पढ़ना चाहिये इससे वैराग्य दृढ़ होता है।

(५३६) जप की संख्या पर नजर रखना भारी भूल है, मन जप में लगा रहे यही प्रधान है

(५३७) भागवत के दशम स्कन्ध (श्री कृष्ण चरित्र) का नित्य पाठ बहुत श्रेष्ठ है

(५३८) परमात्मा के दो स्वरूप हैं (१) अर्चना स्वरूप (२) नाम-स्वरूप। सामग्रियों द्वारा पूजा अर्चना-स्वरूप की पूजा है। पाठ जप आदि से नाम-स्वरूप की पूजा होती है। राम राम

और भागवत प्रभु के नाम-स्वरूप हैं।
नाम-सेवा मन शुद्धि के लिये ही है।
प्रभु-स्वरूप सबको सुलभ नहीं है किन्तु
नाम-स्वरूप सबको सुलभ है और
सरल भी है।
(५३९) प्रभु की कृपा के लिये दुःख सहन करते।
(५४०) पापी की मृत्यु भी अच्छी नहीं होती एवं
दुर्गति तो होती ही है। मनुष्य पाप करता
हँसता हँसता है पर दंड भोगने में रोता है।
(५४१) बिना जाने सुन या पढ़कर मान लेना
श्रद्धा एवं विश्वास है। श्रद्धा एवं विश्वास
अभेद हैं यही अर्धनारीश्वर मूर्ति कहलाती है
(५४२) रामनाम जीवन का कल्पतरु है
(५४३) ढाई मन ध्यान की अपेक्षा तोला भर
आचरण श्रेष्ठ है।
(५४४) पिछले जन्म में कौन किसका क्या रहा है
नहीं कहा जा सकता।
(५४५) पाप करते रहने से तीर्थों में रहने से भी
तीर्थ-फल नहीं मिलेगा।

(५४६) कर्ज चुकाओ ब्याज मत चुकाओ (यहां दुःख पूर्वजन्म का प्रारब्ध फल यानि कर्ज है और दुःखी होना उसका ब्याज चुकाना है)

(५४७) जो दुःख से दिन बिताता है वह दुःख नहीं जीवन बिताता है और जो दुःख से दिन बिताता है वह दुःख से जीवन बिताता है।

(५४८) जो दिल से हंसते हैं उन्हें दुःख लोग ही जीना सिखा देते हैं।

(५४९) देवता और मनुष्य का भेद:—
(१) देवता के शरीर पर पसीना नहीं होता (२) पलकें गिरती नहीं (३) माला कुम्हलाती नहीं (४) शरीर पर मैल नहीं (५) भूमि पर रहते परन्तु धरती नहीं छूते (६) शरीर की छाया नहीं पड़ती। (महाभारत: वनपर्व पृ.105)

(५५०) हर पांच वर्ष दो महीने बढ़ जाते हैं (महाभारत विराट पर्व पृ. 217)

(५५१) ऐसा दिन नहीं रहेगा

(५५२) नकली वेश में (कुली, मजदूर, भिखारी आदि) महापुरुष सब जगह विचरते रहते हैं।

(५५३) जीवन जब अति कष्टमय होता है तब संयोगजन्य दुःख की इच्छा करते हैं। मृत्यु जब अति कष्टमय होती है तब जीने की इच्छा करते हैं।

(५५४) इच्छा का त्याग करने में सब स्वतंत्र हैं कोई पराधीन नहीं। इच्छापूर्ति करने में सब पराधीन हैं कोई स्वतंत्र नहीं।

(५५५) युद्ध करने की अपेक्षा उसे टाल देना ही उत्तम है। बिना युद्ध के यदि थोड़ा भी लाभ हो तो उसे बहुत मानना चाहिये कारण, युद्ध में हारने वाला तो हारता ही है जीतने वाला भी हारा ही समझो कारण क्षति दोनों की होती ही है।

(५५६) जिस वस्तु की आवश्यकता पड़ती है उसे दान में दे डालना उचित नहीं क्योंकि उसके अभाव में कष्ट होने पर दान के लिये पश्चात्ताप करने से ऐसा दान व्यर्थ हो जाता है।

(५५७) पुरुष अभिभावक की गैरहाजरी में किसी गृहस्थ के घर अविवाहित युवक का रहना ठीक नहीं।

(५५८) जिसे जो वस्तु कल्याण देनेवाली है उसे वही वस्तु भगवान देते हैं।

(५५९) मनुष्य धर्म(धन) का दास है किंतु धर्म मनुष्य का दास नहीं है क्योंकि लक्ष्मी चंचल है।

(५६०) [illegible] है जिसका [illegible] भगवान को भजनेवाले प्राय: गरीब [illegible] होते हैं और लक्ष्मीपति [illegible] ऐसे धनी [illegible] भोगी ही होते हैं

॥ भगवान के दास बनकर [illegible] [illegible] में उसका विवेक है

(५६१) गुरुजनों को तू कहकर बात करना उन्हें मार देने के समान है। अपने आपकी बड़ाई करना आत्म-हत्या के समान है। अपने से छोटों को त्याग देना उनका बध करने के समान है।

(५६२) जब तक विपत्ति न आ पड़े, निकट सम्बन्धी न हो, मित्रता न हो, अतिशय प्रेम न हो तब तक दूसरे के घर में भोजन नहीं करना चाहिये।

(५६३) मरे हुए शत्रु को अपनी कठोर बातों से फिर मारना उचित नहीं है।

(५६४) परमात्मा ने ही अर्जुन के गर्व के साथ भार उतार लिया है :-
(१) आदित्य (२) वामन के रूप में इन्होंने अदिति के गर्भ से।
(३) पुनः जामदग्नि परशुराम अग्नि द्वारा
(४) ... अर्जुन कश्यप के रूप में
पांच बार उनके अनेक जन्मों में।
(महाभारत - शान्तिपर्व - युधिष्ठिर द्वारा श्री कृष्ण की स्तुति)

(५६५) अपने अधीनस्थ कोई भी कर्मचारी (अथवा आश्रित एवं नौकर) के साथ कभी भी हंसी-मजाक नहीं करना अन्यथा मुँह लग जायेंगे।

(५६६) मानसिक दुख से शारीरिक दुख अधिक प्रबल होता है। (श्री कृष्ण)

(५६७) ज्ञान-मार्ग में ध्यान और भक्ति मार्ग में ज्ञान श्रेष्ठ साधन है। ज्ञान भगवान के नाम और

मनुष्यों गुणों का होता है। कथा फल
है कीर्तन जिसका रस है भक्त और
भगवत् चरित्रों की कथा ही
भागवती कथा है।
(५८८) दशरथ जी श्री राम का अवतार वर्तमान
मन्वन्तर के चौबीसवें त्रेतायुग में
हुआ था। एक करोड़ इक्यासी लाख
1,82,00,000 वर्ष पूर्व श्री राम प्रकट
हुए थे। (मानस मणि ४४ अंक मई 1985
पृष्ठ ८५)